बग़ावत पर सोचते हुए बाग़ी

उपलब्धियाँ, विषाद और अवसाद

बनस्मिता बोरा

यह अनुसंधान उत्तर-पूर्वी भारत में समय-समय पर फूट पड़ने वाले हिंसक विद्रोहों की जटिलताओं को समझने की कोशिश का नतीजा है। इसमें हिंसा से जुड़े विविध पहलुओं, मनोविज्ञान व अध्ययन का संदर्भ केवल असम के सशस्त्र संगठनों तक ही सीमित रखा गया है। वस्तुतः इसका मुख्य उद्देश्य कथित विद्रोहियों की प्रासंगिकता, अभिप्राय एवं निर्धारित लक्ष्यों के संदर्भ में उनके योगदान की पड़ताल और मूल्यांकन करना है। साथ ही इस अनुसंधान में इस बग़ावत में निहित मूल्यों एवं आकांक्षाओं के विधेयक तत्त्व तथा उन आंदोलनों की अनुपलब्धियों और विफलताओं से उत्पन्न हताशा, निराशा और हानि पर भी दृष्टिपात किया गया है। लेख के निष्कर्ष मुख्य रूप से विद्रोही समूहों के सदस्यों के साथ किये गये लम्बे साक्षात्कारों पर आधारित हैं। ये तथाकथित बाग़ी या तो भारत सरकार के साथ हुई शांति-वार्ताओं में सहभागी रहे हैं या फिर सुरक्षा बलों के समक्ष आत्म-समर्पण कर चुके हैं। इन साक्षात्कारों में घोषित या अघोषित रूप से अपने संबंधित संगठन से 'सेवानिवृत्ति' यानी कि अलग होने की घोषणा कर चुके सदस्यों से हुई बातचीत भी शामिल है। दरअसल, इस लेख में जिन बाग़ियों को विश्लेषण का आधार बनाया गया है, वे असम संयुक्त मुक्ति मोर्चा (उल्फ़ा), बोडोलैंड राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा (एनडीएफ़बी), अखिल राष्ट्रीय आदिवासी सेना, दीमा हलीम देओगाह, उत्तर-केंद्रीय पर्वतीय लोंगरी मुक्ति मोर्चा (केएलएनएलएफ़) जैसे संगठनों से जुड़े हुए थे या अभी भी जुड़े हुए हैं।

बाग़ियों ने सशस्त्र संगठन के साथ अपने संबंधों और भूमिका के विषय में जिस प्रकार का आत्मविश्लेषण और चिंतन किया है, उससे लगता है कि उनके आत्मकथ्य या अफ़सानों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। उनके विश्लेषण में यह आत्मकथ्य और उनके वृत्तांत अपरिहार्य और अनिवार्य भूमिका निभाते हैं। उनकी उपलब्धियों के बोध से इस क्षेत्र के सुदूर अंचलों और उनके वासियों के जीवन के हालात और मसलों के बारे में ठोस जानकारी मिलती है। यह अलग बात है कि निजी अनुभव पर आधारित इस आपबीती में वे जिन बातों को अपनी सफलताओं और उपलब्धियों के रूप में गिना रहे होते हैं, उनसे एक नकारात्मक पक्ष ही उजागर होता है। इसके उलट, जब वे अपने संगठन के निर्धारित लक्ष्यों की बात करते हैं तो इन लक्ष्यों को (जिन्हें प्राप्त करने में उन्हें विफलता मिली है) संघर्ष की चेतना के रूप में परिभाषित करते हैं। साक्षात्कारों के दौरान कुछ बाग़ियों ने आंदोलन की आलोचना करते हुए यह भी स्वीकार किया कि विद्रोह के क्रमिक विकास की लंबी अवधि के दौरान उन्हें अपनी कथित उपलब्धियों के बीच भूमिगत दुनिया के स्याह पक्षों से भी रूबरू होना पड़ा। उनकी बातें सुनते हुए ऐसा लगता था कि जैसे कल्पना के स्तर पर हम भी धीरे-धीरे उनकी भूमिगत दुनिया में धँसते जा रहे हैं।

आंदोलन के सकारात्मक योगदान और उपलब्धियों पर एक दृष्टि

यह ज़रूरी नहीं है कि भूमिगत समूहों के किसी एक सक्रिय सदस्य के अंतर्मन में सशस्त्र विद्रोह और अपने संगठन की उपलब्धियों को लेकर जो अहसास हो, वैसा ही बोध अन्य बाग़ियों को भी हो। अकसर उनकी समझ में काफ़ी अंतर होता है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि ये लोग अपने संगठन की उपलब्धियों का विश्लेषण अपने निजी अनुभवों और मन में घर कर गयी आशंकाओं के आधार पर ही करते हैं। अपनी बातों में वे जिन चीज़ों को उपलब्धियों के रूप में रेखांकित करते हैं, उन्हें वस्तुत: सतही और मामूली उपलब्धियों की श्रेणी में ही रखा जा सकता है। इससे सशस्त्र संगठन और उसके उद्देश्यों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता का ज़रूर पता चलता है। और यह भी ज़ाहिर होता है कि अपनी आकांक्षाओं और सपनों को साकार करने के लिए उनकी इच्छा कितनी प्रबल है।

क्षेत्रीय और जातीय अस्मिता के प्रति पूर्वग्रह और व्यवहारगत परिवर्तन : बाग़ियों के बीच एक सामान्य धारणा प्रचलित है कि उनके साथ समुदाय (जाति, नस्ल इत्यादि) या क्षेत्र के आधार पर भेदभाव किया गया है और उन्हें तिरस्कार का शिकार बनाया गया है। उनका मानना है कि पहले उनके साथ अमानवीय और अपमानजनक व्यवहार किया जाता था, लेकिन आंदोलन के बाद इस प्रवृत्ति पर निर्णायक अंकुश लगा है। उनकी नज़र में यह अंतर सशस्त्र आंदोलन की ही देन है। उनके अनुसार हथियारबंद मुहिम के कारण आज उनके प्रति प्रभुत्वशाली 'अन्यों' के व्यवहार और रुख़ में काफ़ी बदलाव आया है। पहले जब वे सरकारी कार्यालयों में जाया करते थे तो न केवल उनकी अनदेखी की जाती थी, बल्कि उन्हें अपमानित भी किया जाता था। मसलन, उन्हें 'मिखिर'[1] और 'कचरी'[2] जैसे अपमानसूचक और अभद्र संबोधन से पुकारा जाता था। सरकारी बसों में यात्रा करते समय एक विशेष समुदाय को निशाना बनाया जाता था। लक्षित समुदाय या जाति से आने वाली महिलाओं के लिए बस में सीटें खाली नहीं की जाती थीं। शक्तिशाली और प्रभावी 'अन्य' उन्हें निम्नस्तरीय कहकर तिरस्कृत करते थे। यह ज़रूर है कि इस अपमान-बोध की तासीर हर समुदाय में अलग-अलग थी। यानी इन लोगों

[1] कचरी एक ऐसा सम्बोधन है जो कुछ जातीय समुदायों के लिए इस्तेमाल किया जाता है. असम में तिब्बती-बर्मन भाषा बोलने वाले ऐसे कई समुदाय हैं जो ख़ुद को एक ही मूल स्रोत से निकला मानते हैं. कचरी कहलाने वाले समुदाय हैं बोडो, डिमसा, चुटिया, सोनोवाल, राभा, ललुंग (तिवा) और गारोस.

[2] अपमानजनक समझा जाने वाला सम्बोधन मिखिर ख़ास तौर से असम की करबी जनजातियों के लोगों के लिए इस्तेमाल किया जाता है.

के साथ सार्वजनिक स्थानों पर होने वाली अवमानना का स्वरूप तो कमोबेश समान रहता था, लेकिन उसका संदर्भ भिन्न निकलता था। आज ऐसे तमाम समुदाय यह बात शिद्दत से महसूस करते हैं कि उनकी अस्मिता और जातीयता की यह स्वीकृति संगीनों की चमक और 'आतंक' का ही परिणाम है।

आजकल बाग़ियों के बीच यह धारणा जड़ पकड़ रही है कि उनके प्रति केंद्र सरकार के रुख़ में पहले की अपेक्षा सार्थक परिवर्तन आया है। इस बदलाव को वे हाल के विकास-कार्यों (राष्ट्रीय योजनाओं की शुरुआत, गैस क्रैकर प्लांट, गुवाहाटी में भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान की स्थापना, सड़क-निर्माण, पुल और नदी-तटों की मरम्मत और राज्य के लिए अपेक्षाकृत अधिक निधियों का आबंटन इत्यादि) के रूप में देखते हैं। उनका मानना है कि उत्तर-पूर्वी राज्यों के प्रति केंद्र सरकार के दृष्टिकोण में आया यह सकारात्मक बदलाव असम में छह सालों तक चलने वाले लम्बे धरने-प्रदर्शनों और लोकप्रिय प्रतिरोध आंदोलनों तथा सशस्त्र विद्रोहों के समेकित प्रभाव का नतीज़ा है।

उल्फ़ा से जुड़े अनेक लोगों की राय में पहले असमी जनता के अधिकारों के प्रति केंद्र सरकार संवेदनशील नहीं थी। पहले सरकार असम के लोगों की आवाज़ सुनना ही नहीं चाहती थी। उल्फ़ा ने इस मुद्दे पर पुरज़ोर संघर्ष किया। उल्फ़ा का कहना है कि अपने इस संघर्ष की उपलब्धियों से वह काफ़ी हद तक संतुष्ट है। उसका मानना है कि असम के प्रति केंद्र सरकार के रवैये में इस संघर्ष के कारण ही यह बदलाव आया है कि आज वह असम को अपने बच्चे के रूप में न देखकर, उसके प्रति अन्य राज्यों के समान एक वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाती है। उल्फ़ा का विचार है कि जैसे-जैसे उसके सदस्य हथियारबंद होते गये, वैसे-वैसे उन्हें अपने क्षेत्र में मज़बूती मिलती गयी। इस प्रक्रिया में वे नये आत्मविश्वास से लैस होते चले गये। इसके अलावा उल्फ़ा को अपनी यह बात भी एक बड़ी उपलब्धि लगती है कि असम के बारे में चीन उसी के नज़रिये को तवज्जो देता है। उसे लगता है कि अगर चीन का कभी भारत के साथ विवाद हुआ तो रणनीतिक दृष्टिकोण से असम की भूमिका चीन के लिए महत्त्वपूर्ण साबित होगी।

सामाजिक-राजनीतिक चेतना और जागरण : साक्षात्कार देने वाले बाग़ी सामाजिक-राजनीतिक चेतना के प्रसार को भी अपनी उपलब्धि के रूप में रेखांकित करते हैं। वे इसे एक बेहतर समाज बनाने का साधन मानते हैं। सच ये है कि बाग़ी सामाजिक-राजनीतिक चेतना और जागृति को भी जनाकांक्षा का एक रूप मान कर चलते हैं। कथित रूप से बाग़ी कहे जाने वाले इन लोगों का मत है कि इस क्षेत्र के लोगों की लामबंदी में संगठन के उद्देश्य और उपलब्धियों के प्रचार-प्रसार की अहम भूमिका रही है।

बहुत से बाग़ी यह स्वीकार करते हैं कि उन्हें अपने पिछड़ेपन, अवमानना और तिरस्कार का बोध संगठन और उनकी राजनीतिक-कक्षाओं से जुड़ने के बाद ही हुआ। उनके अनुसार आम लोगों का भी यही मानना है कि राजनीतिक अधिकारों और लाभ के रूप में उन्हें जो कुछ भी हासिल हुआ है वह संगठन के प्रयासों और उपस्थिति का ही परिणाम है। केएलएनएफ़ के एक कमांडर के मुताबिक़ आज आम लोग संविधान को बेहतर ढंग से समझते हैं और अब वे इतने योग्य हो चुके हैं कि सरकार से सीधे बातचीत कर सकते हैं। वैसे भी इस दौरान सरकार से वार्ता करने की सम्भावनाओं का विस्तार हुआ है। इससे उनकी योग्यता और आत्मविश्वास में एक नया आयाम जुड़ा है। इससे लोगों का मानस नि:संदेह प्रगतिशील दिशा में सक्रिय होगा; समाज में नयी सम्भावनाएँ पैदा होंगी और लोग चीज़ों को अपने दम पर अमली जामा पहनाने में कामयाब होंगे।

बग़ावती समूहों की मान्यता है कि आम लोगों को समाज-सुधारों के महत्त्व एवं उसकी अनिवार्यता से परिचित कराने तथा उन्हें धरातल पर उतारने में भूमिगत संगठनों की बहुत सक्रिय भूमिका रही है। ऐसे संगठन लोगों को यह समझाने में सफल रहे कि उन्हें जो मिलना चाहिए था और जिसके लिए वे सर्वथा उपयुक्त और लायक़ हैं, उन्हें वह नहीं मिला है। इससे लोगों में अपने विकास और बेहतरी के

प्रति संवेदनशीलता और जागृति आयी और परिणामत: वे 'स्व' के विकास की आकांक्षा के लिए तत्पर हुए। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने धान की खेती, पशुपालन, मछलीपालन, गन्ना-मिलों और विद्यालयों के निर्माण के लिए अनथक सफल प्रयास किये और साथ ही इन चीज़ों की अनिवार्यता और ज़रूरत की ओर ध्यान दिलाने के लिए जागरूकता अभियान भी चलाए।

उल्फ़ा से जुड़े और संगठन में उच्च-पदस्थ सदस्य इस बात पर ज़ोर देते हैं कि उनके कार्यक्रमों से गाँवों में कृषि क्षेत्र के प्रति एक नयी जागरूकता आयी हुई है। उन्होंने यह भी सुनिश्चित किया कि तथाकथित बहिरागतों द्वारा सरकारी ज़मीनों का अतिक्रमण न किया जाए। इस संदर्भ में यह तथ्य ग़ौरतलब है कि यहाँ बहिरागतों से उनका अभिप्राय बांग्लादेशियों से है। उल्फ़ा से जुड़े लोग राज्य में विशाल कृषि-फ़र्मों की स्थापना का श्रेय भी लेते हैं। इन फ़र्मों में युवा लड़के उद्यम और श्रम के प्रति प्रेरित होते हैं। दरअसल, यह घटनाक्रम उल्फ़ा के सबसे प्रभावशाली दौर की देन है। उल्लेखनीय है कि आठवें दशक के मध्य से नवें दशक के अंत तक उल्फ़ा लोगों के बीच गहरी जड़ें जमा चुका था। हालाँकि इन लोगों की उपलब्धियों की सूची पर एक अन्य विद्रोही समूह एनडीबीएफ़ भी दावेदारी करता है। लेकिन, इस संगठन से जुड़े अनेक सदस्यों की राय में ये उपलब्धियाँ वस्तुत: उल्फ़ा के प्रयासों का नतीजा हैं। मसलन, उन्होंने ग्रामीणों को अपनी ज़मीनों की रक्षा करना सिखाया और उन्हें भूमि-संबंधों के प्रति सजग बनाया है। ग्रामीणों के पास अभी तक ज़मीन के वैधानिक दस्तावेज़-पट्टा या पोट्टा[3] उपलब्ध नहीं हैं, लेकिन इसके बावजूद उनमें इन अधिकारों के संरक्षण के प्रति ज़िम्मेदारी का बोध पैदा हुआ है और यह बोध व्यावहारिक रूप से सफल भी रहा है।

बाग़ियों ... के आत्मकथ्य या अफ़सानों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। उनके विश्लेषण में यह आत्मकथ्य और उनके वृत्तांत अपरिहार्य और अनिवार्य भूमिका निभाते हैं। उनकी उपलब्धियों के बोध से इस क्षेत्र के सुदूर अंचलों और उनके वासियों के जीवन के हालात और मसलों के बारे में ठोस जानकारी मिलती है। यह अलग बात है कि निजी अनुभव पर आधारित अपनी आपबीती पेश करते हुए वे जिन बातों को अपनी सफलताओं और उपलब्धियों के रूप में गिना रहे होते हैं, दरअसल उनसे उस क्षेत्र के नकारात्मक पक्ष ही उजागर होते हैं। इसके उलट अपने संगठन के निर्धारित लक्ष्यों को (जिन्हें प्राप्त करने में उन्हें विफलता मिली है) वे संघर्ष की चेतना के रूप में परिभाषित करते हैं।

करबी एंग्लोंग के अधिकांश पहाड़ी गाँवों में आज भी पानी की गम्भीर कमी है। केएलएनएलएफ़ के कार्यकर्ता बताते हैं कि पानी के संकट से जूझ रहे गाँवों को पानी के स्रोत जोड़ने के लिए उन्होंने लोगों को सामूहिक स्तर पर काम करने के लिए प्रेरित किया। 2009 में भूमिगत होने से पहले संगठन के कार्यकर्ता गाँवों की बेहतरी के लिए निरंतर काम कर रहे थे।

हथियारबंद बाग़ी इसे अपनी एक बड़ी उपलब्धि मानते हैं कि उन्हें लोगों को सार्वजनिक और साझा कार्यों के लिए प्रेरित करने में आशातीत सफलता मिली। वे बताते हैं कि एनडीबीएफ़ और उल्फ़ा के कार्यकर्ताओं के साथ मिल कर लोगों ने कई झीलों और तालाबों की खुदाई की। इसके अलावा, बाढ़-प्रभावित इलाक़ों में ग्रामीणों की मदद से बाग़ियों द्वारा कुछ गाँवों में बाँस के पुलों, सड़कों की मरम्मत और शौचालयों का निर्माण भी किया गया। उन्होंने नदी के तटबंधों की मरम्मत के लिए तीन और चार दिवसीय कैम्पों का भी आयोजन किया। यह अस्सी और नब्बे के दशक के कुछ शुरुआती वर्षों के बीच का दौर था। इस दौरान एनडीबीएफ़ और उल्फ़ा के सदस्य भूमिगत नहीं हुए थे और उन्हें राज्य की तरफ़ से विशेष और कठिन चुनौतियों का सामना नहीं करना पड़ रहा था।

---

[3] ज़मीन के मालिकाने का दस्तावेज़.

बाहरी दुनिया के साथ सेतु के रूप में : वन-क्षेत्रों में गाँवों का गठन और जमावट, इन हथियारबंद बाग़ियों की एक अन्य उपलब्धि मानी जाती है। विशेषकर एनडीएफ़बी से जुड़े सदस्यों के प्रयास इस संदर्भ में तुलनात्मक रूप से अधिक प्रशंसनीय है। असम और अरुणाचल से लगे सीमावर्ती वन-क्षेत्रों में बोडो समुदाय के नये गाँव बसाये गये। बहुत से लोग इसका सारा श्रेय 'संगठनों' को देते हैं। ग्रामीण लोगों को इस बात का भी भरोसा था कि 'संगठनों' के प्रभाव वाले क्षेत्रों में 'अन्य' लोग आने की हिमाक़त नहीं करेंगे। इन क्षेत्रों में बोडो गाँवों की बढ़ती सघनता इसी व्यापक प्रक्रिया का परिणाम थी।

कई विद्रोहियों ने पूर्वी नागालैंड, भूटान की सीमा और अन्य स्थानों के बहुत दूर-दराज़ के गाँवों तक यात्रा की। इन गाँवों में लोगों को बाहरी दुनिया का ज्ञान नहीं था। वहाँ बाग़ियों ने कपड़े, मच्छरदानी, स्वास्थ्य सुविधाएँ, यहाँ तक कि आपातकालीन स्थिति में चिकित्सकों की उपलब्धता भी सुनिश्चित की। यह सशस्त्र संगठनों के कारण ही सम्भव हो सका अन्यथा इन स्थानों पर तो किसी की पहुँच भी नहीं थी। इन दुर्गम और सुदूर इलाक़ों में विद्यालय भी खोले गये जो अपने आप में एक नया अनुभव था। हालाँकि नब्बे के दशक के मध्य में अर्द्धसैनिक बलों की मुहिम के कारण प्रतिबंधित संगठनों के रचनात्मक कार्यों का क्षेत्र बदल गया। अब वे इनसे आगे के इलाक़ों में सक्रिय हैं।[4]

शिक्षा : कमोबेश सभी संगठनों और समूहों की एक साझी आकांक्षा थी— शिक्षा। कई भूतपूर्व बाग़ी ज़ोर देते हुए कहते हैं कि पहले यह राज्य/क्षेत्र शिक्षा से पूरी तरह वंचित था। भूमिगत समूहों से जुड़े दिग्गजों का दावा है कि उन्होंने आम लोगों में शिक्षा के प्रति जागरूकता फैलाने और उन्हें इसकी अनिवार्यता से परिचित कराने में सार्थक और सकारात्मक भूमिका निभाई है। बातचीत के दौरान उन्होंने यह भी माना कि समाज-सुधार के लिए शिक्षा एक पूर्व-शर्त होती है। एनडीबीएफ़ के कार्यकर्ता बोडो क्षेत्र में शिक्षा की अनिवार्यता पर इतना ज़ोर देते थे कि बच्चों को विद्यालय में दाख़िल कराने के लिए उनके अभिभावकों को नियमित पत्र लिखा करते थे। अगर बच्चे विद्यालय जाने की बजाय घूमते हुए पाए जाते तो उन अभिभावकों को हिदायती पत्र भेजे जाते थे। ज़रूरत पड़ने पर उन्हें दण्डित भी किया जाता था। मसलन, शिक्षा की इस मुहिम से पहले 80 घरों वाले एक गाँव में केवल 25 बच्चे ही स्कूल जाया करते थे। उल्फ़ा की प्राथमिक समिति और अन्य समूहों, विशेषकर युवा संघ के सदस्यों ने अत्यंत ग़रीब पृष्ठभूमि से आने वाले बच्चों की शिक्षा और पढ़ाई में सहायता करते हुए फ़ीस, किताबें और यूनिफ़ार्म जैसी बुनियादी चीज़ों की उपलब्धता भी सुनिश्चित की।

---

[4] असम के चार क्षेत्र में नदी के द्वीप या ब्रह्मपुत्र और उसकी सहायक नदियों के उठे हुए क्षेत्र आते हैं.

इस प्रकार, शिक्षा के क्षेत्र में सशस्त्र समूहों की ख़ासी रचनात्मक भूमिका रही है। पहले कहा जाता था कि भ्रष्टाचार के कारण इस क्षेत्र में विद्यालय खुल ही नहीं पाएँगे। लेकिन जब संगीनें चमकीं तो भ्रष्टाचारी भयभीत हो गये और परिणामस्वरूप विद्यालयों का निर्माण शुरू हो गया। सशस्त्र भूमिगत समूहों की भूमिका केवल शिक्षा संबंधी संरचनाओं के विकास तक ही सीमित नहीं थी, बल्कि उन्होंने आगे बढ़ कर शिक्षा के समुचित विकास के लिए भी गंभीर प्रयास किये। मसलन, ठीक से न पढ़ाने वाले शिक्षक को भूमिगत सशस्त्र समूहों के सदस्यों द्वारा सार्वजनिक रूप से अपमानित किया जाता था। इस प्रकार के शिक्षकों को सार्वजनिक स्थानों पर माफ़ी माँगने के लिए विवश किया जाता था। बाग़ियों ने निजी ट्यूशन की प्रवृत्ति पर भी अंकुश लगाया। उनका कड़ा निर्देश था कि शिक्षक सभी बच्चों को समान भाव और समर्पण के साथ पढ़ाएँ।

उल्फ़ा का विचार है कि जैसे-जैसे उसके सदस्य हथियारबंद होते गये, वैसे-वैसे उन्हें अपने क्षेत्र में मज़बूती मिलती गयी। इस प्रक्रिया में वे नये आत्मविश्वास से लैस होते चले गये। इसके अलावा उल्फ़ा को अपनी यह बात भी एक बड़ी उपलब्धि लगती है कि असम के बारे में चीन उसी के नज़रिये को तवज्जो देता है। उसे लगता है कि अगर चीन का कभी भारत के साथ विवाद हुआ तो रणनीतिक दृष्टिकोण से असम की भूमिका चीन के लिए महत्त्वपूर्ण साबित होगी।

जनता की आपसी समस्याओं के निराकरण में बाग़ियों की भूमिका : दरअसल, गाँवों में बाग़ी समस्याओं के निराकरण या समाधान करने वालों के रूप में जाने जाते थे। कोई भी कठिन समस्या आने पर गाँव के लोग बाग़ियों के पास जाते और अगर बाग़ियों ने इसके समाधान के लिए अपना सहयोग और समर्थन दे दिया तो यह निश्चित मान लिया जाता था कि अब वह समस्या दूर हो जाएगी। इस समय हथियारबंद बग़ावती जमातों और उसके सदस्यों की प्रभुता व लोकप्रियता चरम पर थी। लोगबाग उनकी बातों को प्रेम और श्रद्धा से सुनते थे। इसके पीछे किसी प्रकार के भय या डर के बजाय प्रेम, स्नेह, सम्मान और विश्वास की भावना ज़्यादा थी। लोगों के आपसी विवाद और झगड़े कम नहीं थे। अकसर लोग भूमि-संबंधी विवादों को लेकर इन संगठनों के पास जाया करते थे। विपत्ति के समय ये संगठन भी लोगों के साथ पूरी मज़बूती से खड़े होते थे और उनकी सुरक्षा में कोई कसर नहीं छोड़ते थे।

भ्रष्टाचार पर लगाम : उल्फ़ा के कमोबेश सभी महत्त्वपूर्ण और अनुभवी सदस्यों के बीच इस बात को लेकर व्यापक सहमति दिखती है कि अपने प्रभुत्व के दिनों में संगठन ने भ्रष्टाचार पर नकेल कसने की कोशिश की और अपनी इस मुहिम में वह बहुत हद तक सफल भी रहा। भ्रष्टाचार-उन्मूलन की इस क़वायद में उल्फ़ा ने भ्रष्ट सरकारी अधिकारियों और निर्वाचन पदाधिकारियों को धमकियाँ दीं। यह इन धमकियों का ही असर था कि वे अपनी आदतों से बाज़ आने लगे। इसके परिणाम सार्थक और सकारात्मक रहे और भ्रष्टाचार में तेज़ी से कमी आयी। यह कहना ग़लत न होगा कि उल्फ़ा का स्वर्णिम काल भ्रष्टाचारियों और दलालों के लिए एक कठिन समय था।

सामाजिक कुरीतियों और कदाचारों के विरुद्ध संघर्ष : 'अगर सशस्त्र आंदोलन नहीं होता तो हम सब अभी तक तिरस्कृत और बहिष्कृत हो रहे होते। पहले के बोडो-समाज के बारे में यह धारणा आम थी कि बोडो शराब पीकर गलियों में पड़े रहते हैं, मानो बोडो सिर्फ़ शराब पीने के लिए ही बने हों। आज, शराबखोरी में काफ़ी हद तक कमी आयी है।'[5] एनडीएफ़बी के कार्यकर्ताओं और

[5] नलबारी का आत्मसमर्पण कर चुका एक एनडीएफ़बी कार्यकर्ता.

नेताओं के बीच इस बात को लेकर गहरा विश्वास है कि अगर उनका क्रांतिकारी संगठन नहीं होता तो समाज की कुछ कुरीतियाँ बदस्तूर चलती रहतीं। हालाँकि इस प्रकार के दावे प्राय: सभी संगठन करते हैं, परंतु बाग़ियों द्वारा रेखांकित अनेक उपलब्धियों में यह भी सम्मिलित है कि उन्होंने समाज में व्याप्त शराबखोरी और ड्रग्स के सेवन के ख़िलाफ़ मोर्चा खोला और एक हद तक इस मंसूबे में सफल भी रहे। इसके अलावा उन्हें इस बात का भी गर्व था कि वे लोगों की मानसिकता को बदलने में भी सफल रहे हैं। उनका कहना है कि आज इस क्षेत्र में लड़कियाँ बेख़ौफ़ होकर कहीं भी घूम सकती हैं, तफ़रीह कर सकती हैं, जबकि पहले ऐसा करने की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। वे ज़ोर देते हुए कहते हैं कि उन्होंने लड़कियों के साथ छेड़खानी और उनके व्यापार को रोकने के लिए भगीरथ प्रयास किये। यह उनकी सजगता और सतर्कता का ही नतीजा है कि आज इस राज्य में ऐसी गतिविधियाँ कमोबेश समाप्ति की ही ओर हैं। इतना ही नहीं अब तो युवा लड़के भी असामाजिक क्रियाकलापों, जैसे जुए इत्यादि से कतराने लगे हैं। बाग़ियों ने यह भी कहा कि जब वे आस-पास होते थे तो चोरी और डकैती की घटनाएँ विरले ही होती थीं।

जातीयतावाद का ज्वार : हथियारबंद समूह इस तथ्य को शिद्दत से महसूस करते हैं कि वे 'राष्ट्रवाद' से संबंधित अपने दृष्टिकोण को धीरे-धीरे ही सही लेकिन लोकप्रिय बनाने में सफल रहे हैं। बग़ावती जमातों के उभार से 'राष्ट्रवाद' के भीतर एक उप-राष्ट्रवादी चेतना का भी संचार हुआ। पहले असमी राष्ट्रवादी होना या बोडोवादी होना या फिर, कार्बी या डिमसा राष्ट्रवादी होना अधिक प्राथमिक और महत्त्वपूर्ण था। जातीयता के प्रति लगाव की यह प्रेरणा इन सशस्त्र विद्रोही समूहों की एक बड़ी उपलब्धि मानी जाती है। इससे उनमें निडरता की भावना पैदा हुई। अब एक जाति/समुदाय के रूप में वे अपनी 'राष्ट्रीयता' की सुरक्षा के प्रति अधिक सतर्क और जुझारू हो गये हैं।

बाग़ियों के प्रयासों के कारण अब लोग अपनी भाषा बोलने में झिझकते नहीं, और न ही हीनता का अनुभव करते हैं। उलटे अपनी भाषा पर वे गर्व करते हैं। जबकि पहले लोग अपनी भाषा और संस्कृति से दूर जाते हुए एक वर्चस्वशाली संस्कृति की ओर बढ़ रहे थे। लड़कियों द्वारा अपनी पारम्परिक वेश-भूषा 'दोखना'[6] धारण करना भी एक बड़ी उपलब्धि माना जाता है, जबकि पहले लड़कियाँ इस प्रकार के कपड़े पहनने से कतराया करती थीं। इसी प्रकार, 'गमुसा',[7] जो कि एक पारम्परिक सज्जा थी और लोगों द्वारा उपेक्षित हो रही थी, पहन कर लोग पारम्परिक त्योहारों में शिरकत करने लगे। पहले लोक-जीवन के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण त्योहार 'बिहू' के प्रति लोगों के मन में उदासीनता घर करती जा रही थी। उल्फ़ा ने इसमें पुन: संजीवनी डालने का कार्य किया। लोग अब असमिया गाना सुनते हैं। पहले जहाँ असमिया फ़िल्मों को रिलीज़ न करके उनके स्थान पर हिंदी फ़िल्मों को थोप दिया जाता था। किंतु अब स्थिति परिवर्तित हो चुकी है। अब लोग अपने जातीय सांस्कृतिक प्रतीकों में गहरी श्रद्धा व्यक्त करने लगे हैं और इसके प्रति काफ़ी संवेदनशील हैं। इन सभी जातीय प्रतीकों को सामान्य तौर पर तब मान्यता और प्रतिष्ठा मिली जब अधिक से अधिक लोग इन प्रतीकों को अपने गर्व और ग़ौरवशाली स्मृतियों के रूप में चिह्नित करने लगे। इसने लोगों को अपनी संस्कृति और इससे जुड़े प्रतीकों के प्रति तो सजग और सतर्क तो बनाया ही, साथ ही साथ उनके मन में अपनी साझी विरासत के प्रति सम्मान की भावना पैदा की। इस प्रकार के बदलाव, जिसमें लोगों की अपनी साझी संस्कृति और जातीयता के प्रति गर्व, सम्मान और प्रेम मुखर रूप से व्यक्त हो रहा था, का पूरा श्रेय कथित बग़ावती जमातों को दिया जाता है और इसे उनकी एक बड़ी उपलब्धि माना जाता है। इस

[6] बोडो स्त्रियों द्वारा पहनी जाने वाली एक पारम्परिक पोशाक.

[7] कपड़े का एक छोटा-सा टुकड़ा जिसका किसी समुदाय के लिए अत्यंत महत्त्व होता है. वह असमी गमछा, बोडो गमछा या दूसरे समुदायों द्वारा पहना जाने वाला कोई और क़िस्म का गमछा हो सकता है.

प्रकार, राज्य के लोक जीवन में सामाजिक-सांस्कृतिक पुनरुत्थान की प्रक्रिया अपने अंजाम पर पहुँची।

जातीय गौरव और स्वावलम्बन में व्यक्ति की क्षमता/योग्यता की भूमिका : 'पहले हमारे यहाँ लोग साइकिल की सवारी करने से भी झिझका करते थे। अब वही लोग स्टीम और बोलेरो गाड़ियाँ दौड़ाया करते हैं। लोग अब आत्म-सम्मान और गौरव के साथ जीने लगे हैं— यह केवल क्रांति के प्रभावस्वरूप ही सम्भव हो पाया है।'[8] दरअसल जब अपनी वस्तुस्थिति के प्रति जागरूकता बढ़ती है और मनोवृत्ति को परिवर्तन की तीव्रता का स्पर्श मिलता है तो नयी सम्भावनाएँ खुलने लगती हैं। इससे प्रेरणा मिलती है और व्यक्ति की क़ाबिलियत और आत्मविश्वास अपने समुदाय या जातीयता के गौरव के रूप में परिणत हो जाता है।

बग़ावती जमातों के उभार से 'राष्ट्रवाद' के भीतर एक उप-राष्ट्रवादी चेतना का भी संचार हुआ। पहले असमी राष्ट्रवादी होना या बोडोवादी होना या फिर, कार्बी या डिमसा राष्ट्रवादी होना अधिक प्राथमिक और महत्त्वपूर्ण था। जातीयता के प्रति लगाव की यह प्रेरणा इन सशस्त्र विद्रोही समूहों की एक बड़ी उपलब्धि मानी जाती है। इससे उनमें निडरता की भावना पैदा हुई। अब एक जाति/समुदाय के रूप में वे अपनी 'राष्ट्रीयता' की सुरक्षा के प्रति अधिक सतर्क और जुझारू हो गये हैं।

इस राज्य/क्षेत्र के लोगों को अपनी जातीयता और समुदाय के गौरव और पहचान पर उस समय संकट महसूस हुआ जब राज्य की अर्थव्यवस्था पर बाहरी व्यवसायी वर्गों के हाथों में जाने लगी। लोगों की आम समझ यह है कि इस वस्तुस्थिति में बड़ा परिवर्तन बग़ावती जमातों के उभार के बाद आया। कई लोगों ने इस बात को न केवल महसूस किया बल्कि प्रत्यक्ष रूप से देखा भी कि राज्य में कथित विद्रोही संगठनों के उद्भव के बाद बाहरी लोगों के नियंत्रण वाले उद्यम स्थानीय लोगों को स्थानांतरित किये जाने लगे। उनके अनुसार यह एक ऐसा व्यापक बदलाव था जो दूर से दिखाई देता था। स्थानीय लोगों को प्राथमिकता मिलने का परिणाम यह हुआ कि बाहरी कहे जाने वाले लोग लाभार्थियों की स्थिति से वंचित होते चले गये। अनेक बाग़ियों, विशेषकर उल्फ़ा से जुड़े लोग इस बात को लेकर एकमत थे कि पहले राज्य के उच्चाधिकारी (चाहे वह पुलिस हो या इंडियन ऑयल और कोल इंडिया जैसी सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियाँ) 'बाहरी' थे। किंतु अब बदलाव हो चुका है और इन सभी क्षेत्रों में मूल रूप से असमी लोगों का दबदबा हो गया है। इन स्थानीय उच्चाधिकारियों को देखकर 'संगठनों' को बड़ी संतुष्टि मिलती है और वे गौरवान्वित महसूस करते हैं। सशस्त्र आंदोलन की यह भी एक महती उपलब्धि मानी जाती है।

पहले रेलवे या असम तेल परिशोधन केंद्र में स्थानीय युवकों के लिए नौकरियाँ न के बराबर थीं। उनका प्रतिनिधित्व भी इनमें कमोबेश शून्य ही था। इस बात को लेकर लोगों और अभ्यर्थियों में आक्रोश था कि नियुक्ति-प्रक्रिया में उनके साथ पूर्वाग्रही व्यवहार और भेदभाव किया जाता है। लोगों और युवकों का कहना था कि इस प्रकार के व्यवहार के कारण ही वे इन नियुक्तियों में सफल नहीं हो पा रहे हैं। किंतु अब वे अनुभव करते हैं कि यह उग्रपंथियों के उद्भव का ही परिणाम और सकारात्मकता है कि कुछ महत्त्वपूर्ण नौकरियाँ उन्हें भी मिल रही हैं जो पहले मुख्यत: बाहर वालों के लिए सुरक्षित मानी जाती थीं। इसके अतिरिक्त उनका यह भी कहना है कि आत्मसमर्पण करने वाले बाग़ियों ने उन सभी नौकरियों पर शत-प्रतिशत क़ब्ज़ा कर लिया जो कभी बाहरी कहे जाने वाले बांग्लादेशियों के लिए सुरक्षित समझी जाती थीं। दरअसल आत्मसमर्पण करने वाले इन लड़कों ने 'काम' के एक बहुत बड़े भाग को बांग्लादेशियों से छीन लिया है। इसके अनेक उदाहरण हैं। मसलन, अब राज्य की कुल

[8] सोनितपुर ज़िले में एनडीएफ़बी की राष्ट्रीय परिषद का एक सदस्य.

सत्तर से अस्सी फ़ीसदी निविदाओं/ठेकों को स्थानीय लोगों को आबंटित कर दिया गया है, जबकि इसके पहले इस क्षेत्र में हिंदी-भाषियों का दबदबा था और स्थानीय लोग हाशिये पर थे। राज्य में कुछ ऐसे निश्चित और विशेष क्षेत्र थे जहाँ स्थानीय लोग काम के लिए विचार-योग्य भी नहीं माने जाते थे जब तक कि उनकी पीठ पर मुसलमानों का हाथ न हो। किंतु अब, उल्फ़ा और सुल्फ़ा जैसे संगठनों के कारण उन्हें निविदाएँ/ठेके और काम सुलभ हो रहे हैं क्योंकि कथित तौर पर 'मियाँ' लोग इन संगठनों से भयभीत हो कर उनके आड़े नहीं आते। इस चीज़ को जातीय समुदाय के लिए एक प्रतीकात्मक उपलब्धि के रूप में देखा जाता है कि अब वे एक हद तक अपनी खोई हुई ज़मीन वापस हासिल करते जा रहे हैं।

इसी तरह जब स्थानीय लोग व्यवसायी और उद्यमी के रूप में चर्चित और प्रसिद्ध होने लगे तो वे एक प्रकार से अपने जातीय समूह और समुदाय के लिए गर्व और अभिमान के प्रतीक भी बन गये। इसका श्रेय बग़ावती संगठनों को जाता है। आज व्यवसाय का क्षेत्र स्थानीय लोगों की पहुँच में आ गया है। युवजन व्यवसायी बनने की प्रेरणा ले रहे हैं। अवसरों की बढ़ोतरी के साथ ही वे व्यवसाय संबंधी क्रियाकलापों और गतिविधियों में भाग ले रहे हैं। इस कारण लोगों के जीवन में थोड़ी बेहतरी आयी है। जातीय प्रतीक और गौरव को व्यक्तिवादी दृष्टिकोण से न देखकर सामाजिक-राजनीतिक संदर्भों में समझा जाने लगा है। दरअसल, यहाँ के लोगों में दृढ़ विश्वास है कि अगर सशस्त्र संगठन नहीं होते तो व्यवसाय के क्षेत्र में उनके लिए कोई सम्भावना नहीं थी और न ही असम के तिनसुखिया और बारपेटा जैसे शहरों में उनके लिए अवसर पैदा होते। इनके (बाग़ियों) अनुसार, इन सशस्त्र समूहों के आने से पहले तो राज्य के मूल निवासियों का 'अस्तित्व' ही दाँव पर लगा हुआ था। यह अलग बात है कि इसके साथ ही इन लोगों को एक डर भी सता रहा है। उन्हें लगता है कि स्थानीय लोगों के बीच से ही फिर दलालों और बिचौलियों का एक वर्ग पैदा होगा और वे अपनी स्थिति बनाए रखने के लिए विद्रोही समूहों को समर्थन देने में ज़रा भी नहीं हिचकिचाएँगे।

'स्व' का विकास : व्यक्ति की क़ाबिलियत को प्रोत्साहन एवं लोगों के बीच इस चेतना के प्रसार की अनिवार्यता और आवश्यकता पर बल देना यहाँ के लोगों के लिए वरदान साबित हुआ है। ये मुद्दे भूमिगत समूहों द्वारा उठाए गये थे। दरअसल, चेतना के इस कथित जनवादीकरण का श्रेय इन संगठनों को ही जाता है। संगठनों के अनुसार समय के साथ 'स्वत्व' की अनिवार्यता और प्रासंगिकता निश्चित रूप से अनुपक्षेणीय थी, यानी इससे मुँह नहीं मोड़ा जा सकता था। युवाओं की एक पीढ़ी जो उग्र भूमिगत समूहों और संगठनों से जुड़ रही है, वे स्वभाव और प्रकृति में काफ़ी आदर्शवादी माने जाते हैं। अपने इस भूमिगत जीवन के अनुभवों और प्रशिक्षण के कारण वे बिना तनाव के जीवन की कठिन चुनौतियों का सामना करने का माद्दा रखते हैं। कुल मिला कर वे भी अपने आपको लाभान्वित पाते हैं कि 'संगठन' के सम्पर्कों के कारण असम में वे जहाँ भी जाते हैं, वहाँ उनके लिए अपने किसी भूमिगत कॉमरेड के साथ सम्पर्क की सम्भावना बनी रहती है। वे कहते हैं 'हमारी कोई पृष्ठभूमि नहीं थी और न ही हमारा किसी से सम्पर्क था। हमारा साबिक़ा केवल ग़रीबी से था और हम केवल उसी को जानते थे। यह सब संगठन की है शक्ति है जिसने हमें एक समाज के रूप में पिरोया ... आज लोग हमें सामाजिक-कार्यकर्ता के रूप में जानते हैं। उल्फ़ा ने हमारे लिए एक सामाजिक मंच की उपलब्धता सुनिश्चित की ... अब, मैं लोगों से पहले की तुलना में ज़्यादा जुड़ाव महसूस करता हूँ और मेरा दिमाग़ भी अब बेहतर हो चला है।'[9]

वास्तविक अर्थों में देखा जाए तो किसी कॉमरेड के लिए भूमिगत और प्रतिबंधित जीवन के अनुभव और पाठ किसी औपचारिक शिक्षा की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण और उपयोगी माने जाते हैं।

[9] धींग में उल्फ़ा का भूमिगत जीवन छोड़ चुका एक सदस्य.

केएलएनएफ़ के एक नेता ने इस संदर्भ में अपने अनुभवों पर चर्चा करते हुए हुए कहा कि संघर्ष-विराम के दौरान उनका भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों से गहन विचार-विमर्श हुआ जिसका उसके जीवन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। कुल मिलाकर यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि उन्हें इस इस बात का गहरा यक़ीन है कि ये 'अन्यों' से मिली चुनौतियों और धमकियों से निपटने के लिए पहले की अपेक्षा अधिक तैयार हैं और यह केवल 'संगठन' की उपस्थिति और सक्रियता के कारण ही सम्भव हुआ है। इसी के चलते आज वे सिर ऊँचा उठा कर चलते हैं।

सशस्त्र आंदोलन और विफलता : एक वस्तुपरक दृष्टि

सशस्त्र विद्रोह का एक आलोचनात्मक मूल्यांकन तो इस तरह किया जा सकता है कि इसे उन्हीं की नज़रों से देखा-समझा जाए जो इसका हिस्सा थे, और जिन्होंने इसे जिया और भोगा। उनकी अतीतोन्मुखी दृष्टि यह बताने के लिए काफ़ी है कि जहाँ एक तरफ़ सफलता और उपलब्धि के उज्ज्वल पल हैं, वहीं हताशा और हार के स्याह पल भी बहुत से हैं।

पराजय-बोध : सबसे ज़्यादा तीखा पराजय-बोध उन लोगों को है जिन्हें महसूस होता है कि वे असमिया जनता को अपने मक़सद के बारे में नहीं बता पाए। जनता नहीं जान पाई कि वे क्या करना चाहते थे, वह वैचारिक प्रतिबद्धता क्या थी जिससे अनुप्राणित हो कर वे काम कर रहे थे और जिसकी लगातार विफलताओं के कारण एक तथाकथित सकारात्मक संघर्ष उत्पन्न हुआ। जिस विचारधारा का उद्देश्य एक समाजवादी, सम्प्रभु और स्वतंत्र राष्ट्र की स्थापना करना था, उसकी विफलता ने असमिया लोगों को इस क़दर हताश किया कि अब उनके लिए क्रांति जैसी किसी चीज़ पर आसानी से भरोसा कर पाना आसान नहीं होगा, उसके लिए इकट्ठा होना और लड़ना तो बहुत दूर की बात है। सशस्त्र विद्रोह को सबसे ज़्यादा नुक़सान प्रतिभा से लबरेज़ उन युवकों की मौत ने पहुँचाया जिनके जाने से न जाने कितने घरों के चिराग़ बुझ गये। साथियों की मौत और ज़िंदगी का जब कोई ठिकाना न हो, तो सिर्फ़ अँधेरा बच जाता है और कभी न ख़त्म होने वाला ख़ालीपन।

हर कोई इतना ख़ुशक़िस्मत नहीं होता कि वापस लौटने पर एक सामान्य जीवन बिता सके। बहुत से लोगों ने आज़ादी के लिए इन भूमिगत समूहों को चुना था। पर उन्हें जल्द समझ आ गया की यह एक मरीचिका है। इनमें बहुतों को अब भी नहीं पता है कि उन्हें क्या करना है और क्या नहीं? बहुतों ने व्यग्रता में अपना मानसिक संतुलन खो दिया है, और बहुत से बिना किसी आशा के जैसा चल रहा है, वैसा जीवन चला रहे हैं। जिन आदर्शों के लिए उन्होंने घर छोड़ा था, उन्होंने एक बहुत अलग रुख़ अख़्तियार कर लिया है। सही अर्थों में देखा जाए तो ये विद्रोही उन नौजवानों की बनिस्बत एक निराशाजनक जीवन जी रहे हैं, जो भविष्य के प्रति आशावादी दृष्टिकोण रखते हैं। लेकिन एक सवाल लगातार उनके ज़ेहन में घूमता रहता है कि 'आख़िर समस्याएँ कब ख़त्म होंगी?' परिजनों की मौत भी इनके अकेलेपन की एक मुख्य वजह है। बहुतों ने 1990 की सैनिक कार्रवाई में अपने परिजनों को खो दिया। कुछ बीमारी और दूसरी प्राकृतिक वजहों से मारे गये। विद्रोही जीवन छोड़ देने के बावजूद कुछ लोग अपने परिवार के पास नहीं लौटे। उन्हें लगता है कि सैनिक कार्रवाई के दौरान उनका परिवार मौत और बिछोह के जिस दर्दनाक अनुभव से गुज़रा है, उसके लिए वही ज़िम्मेदार हैं।

समाज से विलगाव का बोध : म्याँमार और बांग्लादेश में काफ़ी समय बिताने के बाद वापस लौटे लोगों के लिए ये क़तई आसान नहीं था। कुछ बाग़ियों को असम का अपना ही समाज बहुत अपरिचित जान पड़ता है। भूमिगत जीवन बिताने के बाद उन्हें सब कुछ बदला हुआ मिला। कुछ को महसूस हुआ कि वे सांस्कृतिक और सामाजिक मूल्य पूरी तरह से चरमरा गये हैं जिन पर उन्हें कभी बेहद गर्व हुआ करता था।

इनसे सम्बद्ध सवाल पूछने पर उन्हें पागल क़रार दिया जा सकता था। युद्धविराम के दौरान असम लौटे कुछ उल्फ़ा विद्रोहियों को शराब की जगह-जगह खुली दुकानें देख कर झटका लगा। स्त्रियों पर हिंसा जैसी घटनाएँ पहले गाहे-बगाहे सुनने को मिलती थीं— वे अब आम हो चली थीं।

संगठन की चुनौतियाँ और सीमाएँ : हालाँकि संगठन ने इस दौरान अपनी समस्याओं के समाधान के लिए कई गम्भीर और अनथक प्रयास किये और इसमें उन्हें काफ़ी हद तक सफलता भी मिली, लेकिन इस दरम्यान क्षेत्र में इन समस्याओं के दुष्प्रभाव भी नज़र आने लगे। संगठन में बेतरतीब और मनमाने ढंग से की गयी भर्ती ने इसके काम-काज के तरीक़ों को अराजक बना दिया। परिणाम यह हुआ कि संगठन और आम लोगों के बीच काफ़ी दूरी बढ़ने लगी। कुछ सशस्त्र समूहों के बीच एक नया रुझान देखने को मिला है। 'अब, ये सशस्त्र समूह माफ़िया की तरह काम कर रहे हैं और ऐसा प्रतीत हो रहा है कि ये लोग संगठन से सिर्फ़ इसलिए जुड़े हैं ताकि अपनी थैली भर सकें।'[10] 'संगठन से जुड़ने वाले नये लोगों के एक विशेष समूह पर यह आरोप लगाया जाता है कि वे संगठन से इसलिए जुड़े क्योंकि उनको लगता था कि ऐसा करने से वे पैसा, कार और अपने लिए अन्य सुविधाएँ अर्जित कर सकेंगे। संगठन के ऐसे रंगरूटों को लालची बताया गया जो समय के साथ और लालची होते जा रहे हैं। इस वस्तुस्थिति के प्रति विभिन्न संगठनों के शीर्ष नेतृत्व ने चिंता जाहिर करते हुए कहा कि इस प्रकार की प्रवृत्ति और मानसिकता संगठन के कार्यकर्ताओं को निम्नस्तरीय और फिर अनुपयोगी बना देगी। उन्होंने भर्ती की प्रक्रिया पर सवाल उठाए और इसकी गुणवत्ता में लगातार कमी आने की बात कही। उन्होंने इस कथित 'बदलाव' को रेखांकित करते हुए कहा कि जब उन्होंने संगठन से जुड़ने निर्णय लिया था तो तत्कालीन परिस्थितियाँ और वातावरण ने उन्हें क्रांतिकारी या विद्रोही बनाया, न कि नये रंगरूटों की तरह अवसरवादी और पैसों का लालची।

संगठनों की इस स्थिति का ठीकरा कुछ लोग साज़िश के दरवाज़े पर फोड़ते हैं। इन लोगों की राय में उल्फ़ा से जुड़े कार्यकर्ताओं में रॉ जैसी खुफ़िया एजेंसियों के भी कुछ लोग थे। सम्भवत: रॉ ने कुछ स्थानीय युवकों को अपनी ओर मिला कर उन्हें उल्फ़ा में भर्ती करा दिया। बहरहाल, कहा जाता है कि संगठन से जुड़ी जितनी भी बुरी चीज़ें और नकारात्मकता सतह पर उभर रही थी, दरअसल वह संगठन से इन नये तथाकथित बुरे लोगों की वजह से ही थी। इन बुरे तत्त्वों ने संगठन की कार्य-प्रणाली को भ्रष्ट कर दिया। फलत: लोगों के बीच सशस्त्र-आंदोलन और समूहों की विश्वसनीयता कम होने लगी। ऐसा भी विश्वास किया जाता है कि सम्भवत: भारतीय खुफ़िया एजेंसियों ने ही ख़ुद छोटे-छोटे विद्रोही समूहों को खड़ा किया। इन छोटे समूहों को उल्फ़ा वाले ही प्रशिक्षण दिया करते थे। हो सकता है कि इन समूहों के कार्यकर्ता इस बात अनभिज्ञ रहे हों, पर उनके नेता वास्तविकता से ज़रूर परिचित होंगे। कुछ लोगों के लिए भूमिगत संगठन से जुड़ना वैसा ही था जैसे कि किसी संगठन में नियमित और निर्धारित वेतन के साथ एक नौकरी करना। कुछ लोगों ने तो इस बात से की भी तसदीक़ करते हैं कि कभी-कभी उल्फ़ा के नाम पर लोगों को मारने के लिए डकैतों का भी इस्तेमाल किया गया।

सांगठनिक अंतर्कलह : 'जंगल में कोई डर नहीं था, किंतु कभी-कभी हम लोगों को एक-दूसरे से ही अधिक डर लगता था।'[11] वस्तुत: समय के साथ संगठन के अंदर नेताओं के बीच व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं को लेकर रस्साकशी शुरू हो गयी थी। नतीजतन संगठन के भीतर नेतृत्व-क्षमता बिखर कर रह गयी। दरअसल, संगठन में शीर्ष नेतृत्व और ज़मीनी कार्यकर्ताओं के बीच काफ़ी दूरी

[10] युद्धविराम के दौर में एनडीएफ़बी की राष्ट्रीय परिषद का एक सदस्य.

[11] तिहू में युद्धविराम के दौरान उल्फ़ा का एक युवा कार्यकर्ता.

आ चुकी थी। उल्फ़ा जैसे समूह अधिक व्यक्ति-केंद्रित बन गये और एक समय के बाद नेताओं के प्रति निष्ठा अधिक महत्त्वपूर्ण हो गयी। सांगठनिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो इस दौरान अलग-अलग नेताओं के इर्द-गिर्द संगठन बनने लगे और ऐसे समूहों की बाढ़-सी आ गयी। वस्तुत: ये समूह अपने मातृ-संगठन से ही अलग हो कर बने थे और इसलिए अस्तित्व में आये कि उस संगठन में नेताओं के बीच पद और उपलब्धियों का श्रेय लेने के बीच होड़ लगी हुई थी। इसके कारण ही उनके बीच ईर्ष्या पैदा हुई, षड्यंत्र रचे गये, टकराव हुए। फलत: नेता संगठन से टूट कर अलग होते गये और छोटे-छोटे समूह बनते चले गये। कुछ मामलों में तो ऐसा देखा गया कि संगठन के अंदर ज़िला स्तर पर ही नागरिक और सेना 'विंग' (प्रकोष्ठ) के बीच मतभेद हो गये।

संगठन के नेतृत्व और नेता दोनों को विफल माना गया क्योंकि इन्हीं लोगों ने आम-जन को वैज्ञानिक समाजवादी समाज देने का वादा किया था। इन विफलताओं के बीच नेतृत्व के पक्ष में तर्क देने की प्रवृत्ति विकसित हुई। यह कहा गया कि आख़िरकार उनके नेता इसी समाज का प्रतिनिधिव करते हैं, इसलिए उनमें जो भी बुराइयाँ दिख रही हैं वे इसी असमी समाज की देन है जो उल्फ़ा से जुड़े नेताओं में भी प्रतिबिम्बित होंगी। इसे स्वाभाविक और सामान्य ठहराया गया। भूमिगत आंदोलन में एक ऐसा वक़्त आता है जब आतंरिक राजनीति ही संगठन पर प्रभावी हो जाती है। और समय के साथ इसमें टूटन शुरू हो जाती है। उल्फ़ा के अंदर भी इस प्रकार की आंतरिक राजनीति शुरू हो गयी— ज़िला स्तरीय राजनीति, नलबारी राजनीति, निचले और ऊपरी असम के विवाद के साथ अनेक प्रकार की 'राजनीति' शुरू हो गयी। अनेक लोगों का मानना है कि अगर संसदीय राजनीति गंदी है तो भूमिगत सशस्त्र संगठनों की राजनीति उससे ज़्यादा गंदी और बदतर है।

भूमिगत समूहों के बीच विभाजन आम बात है। जैसा कि एनडीएफ़बी (पी) के अध्यक्ष धीरेंद्रो बोडो ने कहा कि 'हम न भी चाहे तो भी हमारे बीच संघर्ष होंगे ही। कभी-कभी ये संघर्ष हमें बदनाम करने के लिए सरकार द्वारा बनाए गये होते हैं'। संगठन के कई लोगों का कहना था कि उन्हें 'आत्मसमर्पण का बुखार' जैसी किसी भी चीज़ के बारे में कभी अंदेशा नहीं हुआ था। नब्बे के दशक के उत्तरार्ध में अपने ज़िला नेतृत्व के तहत कई उल्फ़ा लड़कों ने राज्य प्रशासन के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। गुप्त रूप से हत्याओं का दौर इसी दरम्यान शुरू हुआ। (आत्मसमर्पण करने वाले एक उल्फ़ा विद्रोही तिहू के अनुसार) आत्मसमर्पण करने वाले बाग़ियों की कड़ी आलोचना की गयी। उनके ऊपर

दोषारोपण किया गया कि वे राज्य-प्रशासन द्वारा दी जा रही सुविधाओं और भत्तों के कारण आत्मसमर्पण कर रहे हैं और जल्दी ही अपने ही मित्रों और भाइयों पर चढ़ बैठेंगे। संगठन की राय में आत्मसमर्पण करने वाले धोखेबाज़ थे, क्योंकि उन्होंने संगठन को अपूरणीय क्षति पहुँचाई थी। संगठन ने उन्हें दुश्मन माना और सम्भवत: इसलिए आत्मसमर्पण करने वाले कई बाग़ियों की हत्याएँ हुईं। इनकी ज़िम्मेदारी संबंधित संगठन के सक्रिय समूहों ने ली।

अनुशासनहीनता : आदर्श रूप में सशस्त्र संगठनों को अनुशासित माना जाता है, लेकिन इस क्षेत्र के कई सशस्त्र संगठनों के उभार के साथ यह भ्रम टूट गया कि इस तरह का आदर्शवाद लम्बे समय तक टिका रह सकता है। सशस्त्र आंदोलन को लोगों ने एक सामाजिक-राजनीतिक आंदोलन के रूप में देखा था, लेकिन संगठन में बंदूक़ की संस्कृति अपने चरम पर पहुँच गयी। परिणामस्वरूप संगठन बुरे दौर में पहुँच गये। यहाँ तक कि 'कुछ लड़के हथियारों को खिलौने के रूप में इस्तेमाल करने लगे'।[12] बरपेटा रोड में आत्मसमर्पण कर चुके उल्फ़ा के एक कैडर के मुताबिक़ हथियारबंद युवकों ने अपनी ख़ुशहाली के बारे में सोचना शुरू कर दिया। चिंताओं के केंद्र में जी-3 और जी-4 जेएसए राइफ़लें थीं। 'संगठन' में हथियारों का ज़खीरा लाया गया था और एक समय ऐसा था जब कमोबेश सभी के पास एक न एक हथियार था। जल्दी ही हथियार और गोला-बारूद का दुरुपयोग शुरू हो गया और इसे नियंत्रित करने के प्रयास में संगठन का ढाँचा अराजकता और अनुशासनहीनता का शिकार होता गया।

अनपेक्षित रूप से विद्रोह के दौरान बहुत सी हत्याएँ ऐसी हुईं जो दिल दहला देने वाली थीं। दरअसल, इन कथित हत्याओं के दौर में एक 'भाई' ने दूसरे 'भाई' को मारा। संगठन में बंधुत्व की बलि चढ़ा दी गयी। आत्म-समर्पण की प्रक्रिया के बाद भी पूर्व कार्यकर्ता एक-दूसरे की हत्या करते रहे।

निर्दोषों की हत्याएँ और मौत की सज़ा : संगठन में अनुशासन बनाए रखने का एक तरीक़ा यह अपनाया गया कि उन लोगों को मौत की सज़ा दी जाए जो संगठन के नियमों और क़ानूनों की अवहेलना करने की जुर्रत करें या उन्हें मानने से इंकार करें। हालाँकि इरादा केवल मौत की सज़ा सुनाना भर होता था, लेकिन इस प्रावधान का बहुधा दुरुपयोग ही किया गया। मसलन, संगठन के भीतर अपने विरोधियों को रास्ते से हटाने के लिए इस कथित प्रावधान का सहारा लेकर उनकी हत्याएँ कर दी गयीं। इस प्रकार के उदाहरण आम होते चले गये और संगठन के अनेक लोगों की बलि चढ़ा दी गयी। अगर कोई क्षेत्र या बाज़ार में लोकप्रिय होता तो उसे मौत की सज़ा देकर उसकी हत्या कर दी जाती थी और उसका आधार यह बताया जाता कि वह व्यक्ति दल/संगठन-विरोधी गतिविधियों में संलिप्त था। इस तरीक़े से अनेक लोग संगठन में ऊँचे पदों पर पहुँचे। कुछ कार्यकर्ताओं को बहुत ही छोटी ग़लतियों के आधार पर अनेक मौत के मुँह में धकेल दिया गया। 'हम कभी-कभी उन कैडरों को भी गोली मार दिया करते हैं जो किसी कार्य या मिशन को पूरा करने की स्थिति में नहीं होते। घायलों को भी प्राय: गोली मार कर मौत दे दी जाती है ताकि वे संगठन का पर्दाफ़ाश न कर सकें। और इससे संबंधित सूचनाओं का विवरण न दे सकें'।[13]

कभी-कभी कैडर अपनी रक्षा के लिए अपने ही साथी को गोली मार देते थे ताकि लोग यह विश्वास कर सकें कि पुलिस एक ही व्यक्ति की तलाश कर रही है। कभी-कभी उन लड़कियों की भी आसानी से हत्या कर दी जाती थीं जिनके साथ बाग़ियों के प्रेम-संबंध होते थे। ऐसा नहीं है कि ये लड़कियाँ संगठन के ख़िलाफ़ काम करती थीं। मारी जाने वाली कोई सीधी-सादी स्थानीय लड़की भी

[12] बरपेटा में युद्धविराम के दौरान उल्फ़ा का एक कार्यकर्ता.

[13] एडीएफ़बी, रांगिया का एक भर्ती करने वाला एक वरिष्ठ कारकून.

हो सकती थी, लेकिन फिर भी उन्हें बख़्शा नहीं जाता था। संगठन इसे सहन नहीं कर सकता था कि उनके अपने कैडर 'पथभ्रष्ट' होकर संगठन से दूर हो जाएँ। दरअसल, संगठन इन कैडरों के प्रशिक्षण पर बहुत पैसे ख़र्च कर चुके हुए होते थे। ग़ौरतलब है इन कैडरों का प्रशिक्षण चीन, म्याँमार में होता था और इसमें बहुत धन ख़र्च होता था। यद्यपि किसी प्रेम-प्रसंग के कारण लड़की की हत्या करने का निर्णय लेना बहुत संगीन काम होता है, किंतु संगठन के हितों के दृष्टिकोण से इसे तर्कसंगत ठहराया जाता था। इस नकारात्मक और कमज़ोर पक्ष के साथ-साथ नियमों को ताक पर रख देने और संगठन को बदनाम करने वाले उन युवकों को भी मौत की सज़ा दी जाती थी।

कुछ ऐसे मामले भी प्रकाश में आये जिनमें केवल हत्या के लिए हत्याएँ की गयीं। मसलन, अगर किसी एक कैडर को किसी की हत्या का कार्य सौंपा गया और वह अंतर्राष्ट्रीय सीमा पार कर लक्षित व्यक्ति की हत्या करने के लिए पहुँचा, लेकिन अगर उसे वह कथित व्यक्ति नहीं मिला तो उसने अपने प्रयास को सफल दिखाने के लिए कुछ व्यक्तियों की बेकार में हत्या कर दी। हालाँकि ऐसी घटनाएँ बहुत कम थीं, लेकिन कुछ बाग़ियों ने इसकी पुष्टि की है।

समय के साथ संगठन के अंदर नेताओं के बीच व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं को लेकर रस्साकशी शुरू हो गयी थी। नतीजतन संगठन के भीतर नेतृत्व-क्षमता बिखर कर रह गयी। दरअसल, संगठन में शीर्ष नेतृत्व और ज़मीनी कार्यकर्ताओं के बीच काफ़ी दूरी आ चुकी थी। उल्फ़ा जैसे समूह अधिक व्यक्ति-केंद्रित बन गये और एक समय के बाद नेताओं के प्रति निष्ठा अधिक महत्त्वपूर्ण हो गयी। सांगठनिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो इस दौरान अलग-अलग नेताओं के इर्द-गिर्द संगठन बनने लगे और ऐसे समूहों की बाढ़-सी आ गयी।

एक दूसरी दृष्टि से देखें तो अनेक कार्यकर्ताओं की मौत में 'विद्रोह' की भूमिका रही है। इसमें सुरक्षा बलों द्वारा निर्दोषों पर ढाया गया जुल्म भी शामिल है। राज्य में ऐसे अनेक मामले हैं जिनमें छद्म या नक़ली मुठभेड़ का सहारा ले कर लोगों को मौत की नींद सुला दिया गया। गाँव के अनेक लड़कों को खेतों में ले जाकर बुरी तरह पीटा गया और फिर नृशंसतापूर्वक उनकी हत्या कर दी गयी। इतना ही नहीं वृद्ध लोगों को भी बिना अकारण पीटा गया।

संगठन की कार्य-प्रणाली की आलोचना : 'कभी-कभी हम कुछ ऐसे काम करते हैं जो कल्पना से परे होते हैं, ऐसे काम जो हमें नहीं करनी चाहिए थे। लेकिन कुछ तूफ़ान तो आपके जीवन में आते ही हैं।'[14] हमारे कई साक्षात्कारों के दौरान भूतपूर्व कार्यकर्ताओं ने संगठन की कार्य-प्रणाली पर भी सवाल उठाए। उनका कहना था कि सशस्त्र संगठनों में समतामूलक नीति नहीं अपनाई जाती। इसके अंदर उन लोगों का दबदबा है जो कुछ निश्चित और विशेष क्षेत्रों से दीक्षित और प्रशिक्षित होकर आये हैं। इसके विपरीत सारे विषम कार्य— मसलन, फ़िरौती वसूलना, धमकी देना, मुठभेड़ों का सामना करना— कैडरों के हिस्से में आते हैं। यहाँ तक कि कैडरों के बीच में भी पदानुक्रम है और बहुधा कम पढ़े-लिखे या किसी अत्यंत पिछड़े क्षेत्र से आने वाले कैडर ही सर्वाधिक शोषित होते हैं। कुछेक कार्यकर्ताओं ने यह भी बताया कि उन्हें प्रशिक्षण के दौरान प्रताड़ित भी होना पड़ा क्योंकि उनके प्रशिक्षकों को अपनी वरिष्ठता का गुमान रहता था। शिविर-जीवन के दौरान कुछेक के साथ प्रशिक्षकों द्वारा मारपीट तक होती है। संगठन के काम-काज के इस तरीक़े की भी कड़ी निंदा की गयी कि कैडरों को मनमाने तरीक़े से जंगल से शहरों की ओर जाने का फ़रमान सुना दिया जाता है।

[14] युद्धविराम के दौर में एनडीएफ़बी का एक सदस्य.

परिणामस्वरूप कथित कैडर नयी परिस्थितियों के साथ सामंजस्य बैठाने में कठिनाई का अनुभव करता है और या तो मुठभेड़ में मारा जाता है या फिर सुरक्षा-बलों द्वारा पकड़ लिया जाता है।

कई लोगों को उम्मीद नहीं थी कि उनका शिविर-जीवन ऐसा होगा, विशेषकर आदर्शों और यथार्थ के बीच का अंतर उनके लिए अनपेक्षित था। 'जब लड़के ठण्ड में काँप रहे होते थे तो उस समय हमारे नेता कोरियाई कम्बल का मज़ा ले रहे होते थे'। (एनडीबीएफ़ का एक कैडर और आत्मसमर्पण कर चुका उल्फ़ा का एक कमांडर, नगाँव)[15] उल्फ़ा भी अलग-अलग जातीय समुदायों के लोगों को एक बैनर के तहत लाने में विफल रहा। समुदायों के बीच व्याप्त मतभेद और पूर्वग्रह संगठन में प्रतिबिम्बित होते रहे और वह उनके बीच समन्वय स्थापित नहीं कर पाया। एक ऐसा संगठन स्वयं को इन पूर्वग्रहों से ऊपर नहीं रख सका जिसका उद्देश्य संयुक्त स्वर्णिम असम राज्य को आकार देना था। कई लोगों ने यह समझा कि यह बहिरागत-विरोधी आंदोलन है, किंतु उल्फ़ा ने बांग्लादेश में आश्रय लिया हुआ था, इसलिए इस संगठन के सदस्य अवैधानिक तरीक़े से आने वालों के ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं कर सके।

कुछ कैडरों ने इस बात की ओर इशारा किया कि उल्फ़ा में हथियारों की ख़रीद-फ़रोख़्त और पैसे के प्रभाव की बहुत बड़ी भूमिका है। काम-काज के तरीक़ों में भ्रष्टाचार और भेदभाव बहुत बढ़ गया है। इसको प्रमाणित करने के लिए उदाहरण देते हुए कहा गया कि जो करोड़पति या अरबपति हैं उनकी ग़लतियों को संगठन माफ़ कर देता है, क्योंकि वे संगठन को पैसा देते हैं। जो अमीर नहीं है उन्हें सिर्फ़ शराब पीने या अन्य छोटी ग़लतियों के लिए सख़्त सज़ा दी जाती है या फिर उनकी हत्या ही कर दी जाती है। इसके लिए सिर्फ़ और सिर्फ़ उल्फ़ा की समितियाँ ही ज़िम्मेदार थीं। संगठन के सदस्य आम आदमी को बहुत मामूली ग़लतियों के लिए भी सड़क पर पकड़ धुन दिया करते थे। अनेक सदस्य अवसरवादी बन गये। कइयों को पश्चाताप है कि उन्हें असमिया गौरव की सुरक्षा की ख़ातिर अपने आंदोलन के साथ सौदेबाज़ी करनी पड़ी।

उल्फ़ा से जुड़ी एक अनुभवी महिला ने अपने संगठन के गिरते स्तर के बारे में चर्चा करते हुए कहा कि जब हम बर्मा और भूटान के शिविरों में रहा करते थे तो वहाँ शायद ही तथाकथित आज़ादी के बारे चर्चा की जाती थी। वहाँ संगठन के अंदर सभी विवाहित थे और रोज़मर्रा की ज़िंदगी गुज़ार रहे थे। उनके पास अपने उन उद्देश्यों के बारे में गहराई से सोचने का वक़्त नहीं था जिनसे प्रतिबद्ध और प्रेरित होकर वे संगठन में सम्मिलित हुए थे।

दुर्भाग्यपूर्ण घटनाएँ और लोकप्रियता में ह्रास : कुछ घटनाओं को उल्फ़ा के सभी सदस्य दुर्भाग्यपूर्ण और ग़लत मानते हैं। 1997 के दौरान माजुली में संजय घोष[16] तथा 1991 में रूस के कोयला इंजीनियर सर्गेई ग्रेटचेंको[17] की हत्या और धेमाजी बम-विस्फ़ोट[18] जिसमें दस बच्चों समेत तेरह लोग हताहत हुए थे— कुछ ऐसी ही घटनाएँ थीं। कई कॉमरेडों ने इन घटनाओं को अनावश्यक बताया और स्वीकार किया कि इसके कारण उल्फ़ा के अंतर्राष्ट्रीय समर्थन में कमी आयी, और संगठन को अपूरणीय क्षति हुई। इसके लिए ज़िला नेतृत्व को ज़िम्मेदार ठहराया गया जिसने केंद्रीय नेतृत्व से सलाह-मशविरा किये बिना ही इन घटनाओं को अंजाम दिया था। धेमाजी बम-विस्फ़ोट पर असम की जनता में गहरा आक्रोश पैदा हुआ था। उल्फ़ा के इस काम की बहुत व्यापक निंदा की गयी।

---

[15] नगाँव में उल्फ़ा का एक भूतपूर्व कमांडो.

[16] असम में सामुदायिक स्वास्थ्य और विकास के लिए काम करने वाले एनजीओ एवीएआरडी-एनई के एक कार्यकर्ता का उल्फ़ा ने 4 जुलाई, 1997 को माजुली से अपहरण किया. अगले दिन उसकी हत्या कर दी गयी.

[17] सेर्गेई का 1991 में मार्गरीटा से अपहरण किया गया और फिर उसकी हत्या कर दी गयी.

[18] 2004 में स्वतंत्रता दिवस पर उल्फ़ा ने असम के धेमाजी ज़िले में परेड ग्राउंड में बम का विस्फोट किया था.

'भ्रष्टाचारी' गतिविधियों के ख़िलाफ़ संघर्ष को कमोबेश सभी समूहों का समर्थन था, लेकिन इसी के साथ ज़्यादातर लोगों का यह भी मानना था कि भ्रष्टाचार को रोकने के लिए बेहद नकारात्मक तरीक़े अपनाए गये। इसके चलते पिछली लगभग सभी बुराइयाँ पुनर्जीवित हो उठीं। कुछ पुराने दिग्गजों ने क़ानून को अपने हाथ में लेने और खुद ही फ़ैसले लेने की आलोचना की। अपहरण और हत्याओं की कई घटनाओं को भी अनावश्यक बताया गया। उनके अनुसार एक समय के बाद संगठन में अहमन्यता हावी हो गयी थी और इसे जायज़ ठहराने के लिए यह जुमला उछाला गया कि ये काम तो सभी लोगों के लिए किया जा रहा है। जब उल्फ़ा दुर्भाग्यपूर्ण, ग़लत और संशयपूर्ण फ़ैसले ले रही थी तो राज्य में कुछ अवसरवादी ताक़तें उभरीं जिनका केवल और केवल एक ही उद्देश्य था—अपने निजी हितों की रोटी सेंकना और ऐसा उन्होंने उल्फ़ा के नाम पर किया। जब 'निर्दोष' लोग और संगठन के शुभचिंतक उल्फ़ा को आगाह करने पहुँचे तो उन्हें या मौत को गले लगाना पड़ा या फिर उन पर बेइंतहा जुल्म और हिंसा ढाई गयी। सरल प्रकृति के असमिया लोगों को उल्फ़ा द्वारा मौत की सज़ा देने के तरीक़े से भी ऐतराज था। इस प्रकार की घटनाओं के कारण उल्फ़ा जल्दी ही अलोकप्रिय हो गया।

टकराव और समाज पर उसका प्रभाव : एक आलोचना

समाज में भीषण हिंसा : 'हमने हिंसा से काफ़ी कुछ सीखा है।' राज्य में विद्रोह के दौरान अत्यधिक और निर्मम हिंसा के उदाहरण प्रकाश में आये। इस अमानवीयता को यहाँ के समाज ने झेला और सहन किया। चरम क्रूरता, अनगिनत मौतें और फ़र्ज़ी मुठभेड़ों की ख़बरें इस राज्य में आम हो गयी थीं। हालात इतने बदतर हो गये थे कि लोग आसपास के माहौल से उदासीन होने लगे थे। न तो हिंसा से उन्हें कोई फ़र्क पड़ता था और न ही वे इससे बचने की कोशिश करते थे। उल्फ़ा और एनडीबीएफ़ ने अनेक निर्दोष लोगों को मौत के घाट उतार दिया जबकि उनका इस टकराव से दूर-दूर तक कोई रिश्ता नहीं था। ऐसे कई मामले दर्ज तक नहीं किये गये क्योंकि लोग सेना से बहुत आतंकित थे। सेना से भय या आतंकित होने के कारण लोगों को यह समझ ही नहीं आ रहा था कि उन्हें इन मामलों की शिकायत किससे और कैसे करनी चाहिए। अंततः भयाक्रांत लोग ने प्रतिशोध लेने की ठानी और इसे ही बेहतर विकल्प माना। नतीजा यह हुआ कि हिंसा का एक सिलसिला बनता गया। कुछ क्षेत्रों में तो सुरक्षा-बलों ने बेइंतहा जुल्म किये जो वर्षों तक चलते रहे और इसने स्थानीय लोगों की मन:स्थिति को बुरी तरह प्रभावित किया।

अंतर्जातीय संघर्ष : साक्षात्कारदाताओं के मुताबिक़ बग़ावती जमातों द्वारा कुछ विशेष समुदायों को ही निशाना बनाये जाने के कारण जातीय समूहों के बीच अविश्वास उभरना शुरू हो गया था। इसका परिणाम यह हुआ कि बाद में ये एक-दूसरे से अदावत रखने लगे। आये दिन संघर्ष होने लगे जिनमें बहुधा वही मारे जाते थे जिनकी कोई ग़लती नहीं होती थी। यह कुछ विद्रोही समूहों के लिए चिंता का विषय बन गया। आम तौर पर लोग आपस में सद्भाव और भाई-चारे के साथ रहते आये थे, किंतु इस प्रकार की परिस्थिति में समुदायों के बीच दूरी बढ़नी स्वाभाविक थी। समय के साथ यह दूरी खाई में तब्दील हो गयी। जातीय समूहों के बीच इस प्रकार का तनाव बढ़ने से लोगों के आपसी संबंध बुरी तरह प्रभावित हुए। इस संबंध में उल्फ़ा को तरह-तरह के जातीय आंदोलनों और हथियारबंद दस्तों के उभार के लिए भी ज़िम्मेदार माना जाता है। जातीय समुदायों के बीच शांति और समझौता क़ायम करने के लिए गठित की गयी स्वायत्त समितियाँ दलालों और 'ब्रोकरों' का मंच बन कर रह गयीं। इससे समुदायों के भीतर अंतर्कलह के बीच पैदा हुए। हालाँकि यह कहना कुछ लोगों को आश्चर्य में डाल देता है परंतु सच यह है कि असम में 'जनजातियों' के बीच पैदा किया गया कृत्रिम संघर्ष और विवाद इस राज्य को और कमज़ोर करता है।

'लोकवादी' भ्रष्टाचार या लोगों के बीच भ्रष्टाचार : राज्य में विद्रोह के उभार के कारण आम आदमी के जीवन में कई अवांछित क़िस्म के बदलाव भी आये। मसलन, अनेक स्थानों पर साधारण लोग अचानक दौलतमंद होने लगे। अनायास ही उनके सम्पर्क प्रभावशाली लोगों से बनने लगे। ग़ौरतलब है कि इस धन को घर में ही एकत्रित करके रखा जाता था। इसलिए (धन और शक्ति) लोगों को भ्रष्ट होने में ज़्यादा समय नहीं लगा। भ्रष्टाचार के रास्ते आए इस धन ने सामाजिक मूल्यों को छिन्न-भिन्न करके रख दिया। भूतपूर्व बाग़ी ख़ुद को समाज का सर्वेसर्वा मानने लगे। नयी-नयी ताक़त और भौतिक-सम्पदा से बौराये बाग़ियों के कारण समाज में वृद्ध जनों और युवजनों के आपसी संबंधों का पारम्परिक ढाँचा चरमराने लगा। यह एक नकारात्मक बदलाव था जो युवाओं को असामाजिकता और विघटन— मसलन, शराबखोरी, जबरन वसूली, अभद्र और अमर्यादित भाषा की ओर ले जा रहा था। जहाँ कुछ बाग़ी अपने समुदाय में व्याप्त शराबखोरी के ख़ात्मे के लिए मोर्चा खोले हुए थे, वहीं कुछ अन्य जगहों पर और कुछ विशेष और निश्चित तबक़े के लोगों, जो अब भूमिगत नहीं थे और सामान्य जीवन व्यतीत कर रहे थे, के बीच शराब पीना एक 'फ़ैशन' बन गया था। इसके अलावा विभिन्न जातीय समुदायों के बीच उभरती हिंसा और तीखी शत्रुता भी एक 'ट्रेंड' बन चुकी थी। लोगों ने ऐसी कई घटनाओं के बारे में बताया जिनमें विद्रोह की आड़ में व्यक्तिगत शत्रुता का हिसाब चुकता किया जाता था। इन घटनाओं में अकसर तथाकथित शत्रु पर झूठे आरोप लगा कर उनकी हत्या कर दी जाती थी। यह बहुत सामान्य और आसान बात थी। लड़के जबरन उठाए जाते थे और फ़र्ज़ी मुठभेड़ों की आड़ में उन्हें मौत के आगोश में भेज दिया जाता था।

पूर्व-बाग़ियों में अपने जीवन को लेकर असंतोष का भाव : असम के विभिन्न हिस्सों में ऐसे कई पूर्व-बाग़ी हैं जिन्होंने उल्फ़ा या अन्य समूहों से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति ले ली है लेकिन औपचारिक तौर पर आत्मसमर्पण नहीं किया है। उनमें से कइयों ने आदर्शवादी जीवन जारी रखा है और कुछ तो वास्तव में रोज़ी-रोटी के लिए संघर्षरत भी हैं, जबकि कुछ अन्य लोग भी हैं जो अपनी भूमिगत विचारधारा पूरी तरह से छोड़ चुके हैं और खुद को स्थापित करने की कोशिश में ऐसी गतिविधियों में उलझ कर रह गये हैं जिन्हें असामाजिक माना जाता है।

उल्फ़ा से जुड़े एक अनुभवी और ज़िला स्तरीय कमांडो ने बताया कि कोयले से संबंधित धंधे में जो लोग शामिल थे, वे आज इटालियन संगमरमर वाले घरों में रह रहे हैं। उनके बच्चे दिल्ली पब्लिक स्कूल में पढ़ रहे हैं। कोई भी उन हज़ारों शहीदों के बारे में नहीं सोचता जिन्होंने संगठन और समाज की बेहतरी के लिए अपने प्राणों की क़ुर्बानी दे दी। ऐसे अनेक बाग़ी आज सक्रिय राजनीति में हैं जो कभी संगठन से जुड़े हुए थे लेकिन बाद में उन्होंने स्वेच्छा से अपने-आपको इससे अलग कर लिया था। ऐसे राजनीतिज्ञ और पूर्व-विद्रोही सामान्य जीवन व्यतीत कर रहे उन बाग़ियों की नज़र में अवसरवादी हैं। ये ऐसे राजनेता हैं जो अपने व्यक्तिगत हितों के तुष्टीकरण और वर्चस्व के लिए ही काम कर रहे हैं।

एक तरफ़, कई लोगों का मानना है कि औपचारिक तौर पर आत्मसमर्पण करने वाले बाग़ियों की जाँच की जानी चाहिए। वहीं, दूसरी ओर ऐसे लोग भी हैं जो इस सोच की कड़ी निंदा करते हैं। कई लोगों पर यह आरोप भी है वे राजनेताओं और सेना के 'एजेंट' हैं और सिर्फ़ पैसे के लिए काम करते हैं। अखिल बोडो छात्र संघ के अध्यक्ष प्रमोद बोडो को रिटायर होने के लिए विवश कर दिया गया क्योंकि उन्होंने संघर्ष-विराम के दौरान आत्मसमर्पण करने वाले बाग़ियों की जाँच की आवश्यकता पर बल दिया था। चूँकि बीएलटी और एनडीएफ़बी के कई सदस्य लखपति और करोड़पति समूह के सदस्य हैं, इसलिए उन्होंने प्रमोद बोडो को स्वेच्छा से अलग होने के लिए बाध्य कर दिया। प्रमोद बोडो ने भी इन पूर्व-बाग़ियों को निशाना बनाते हुए और पुरज़ोर तरीक़े से प्रश्न उठाया, 'इन पूर्व-

बाग़ियों की विचारधारा कहाँ चली जाती है जब ये संगठन से रिटायरमेंट ले लेते हैं?'

पूर्व-बाग़ियों की असुरक्षा और सीमाएँ : कभी बाग़ी रहे और अब सामान्य जीवन व्यतीत कर रहे कुछ विद्रोही अब राज्य के धनी और समृद्ध व्यापारियों में शामिल हैं। इन कथित बाग़ियों का कहना है कि उन्हें ऐसे आरोपों से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। उन्होंने धन कमाया है और अपने जीवन में प्रगति की है, लेकिन फिर भी सामाजिक रूप से वे ख़ुद को उपेक्षित, तिरस्कृत और बहिष्कृत महसूस करते हैं। उनके साथ सुल्फ़ा और आत्मसमर्पण करने वालों का 'टैग' हमेशा चिपका रहेगा और जैसा कि इनमें से कुछ लोग कहते है कि युद्ध-विराम के दौरान उनकी प्रतिष्ठा और सम्मान दोनों को बट्टा लग गया। 'बाघ जंगल में ही बाघ रह पाते हैं। चिड़ियाघर में वे बेकार हो जाते हैं। यही बात संघर्ष-विराम के लिए भी सही, प्रासंगिक और उपयुक्त है।'[19]

सरकार के साथ शांति-वार्ता में सम्मिलित रहे बाग़ियों या विद्रोहियों को हज़ारों युवकों की मौत का ज़िम्मेदार ठहराया जाता है। उन पर यह आरोप लगाया जाता है कि उन्होंने सरकार के साथ मिल कर जिस प्रकार की नीति तैयार की और संघर्ष-विराम पर अपनी सहमति दी, उसके कारण अनेक बाग़ियों की बलि चढ़ गयी। यद्यपि बाग़ियों के रूप में 'शांति-दूत' कहे जाने वाले ये विद्रोही अब सुविधाभोगी जीवन व्यतीत कर रहे हैं किंतु अभी भी उनको चेतावनियाँ और धमकियाँ मिलती रहती हैं कि उनकी 'हत्या' कर दी जाएगी— राजनीतिक रूप से न कि शारीरिक रूप से। वे कहते हैं कि 'हम लोग सरकार के द्वारा इस्तेमाल किये गये हैं और लोगों को भी हम पर संदेह है।'[20] यानी हथियार डाल चुके बाग़ी भी असुरक्षित हैं। जैसा कि कुछ बाग़ी कहते हैं, वे सेना के लिए एक बंदी की तरह हैं। उनका यह भी दावा है कि सेना ने किस तरह संघर्ष-विराम के दिनों में भी उन्हें हथियार दे कर या पकड़ कर रखने के लिए कह कर फँसाना चाहा। ऐसे ही कई प्रकार के हथकण्डों से सेना उन्हें अपने जाल में जकड़ना चाहती थी।

बग़ावती जमातों द्वारा कुछ विशेष समुदायों को ही निशाना बनाने के कारण जातीय समूहों के बीच अविश्वास उभरना शुरू हो गया था। और इसका परिणाम यह हुआ कि बाद में ये एक-दूसरे से अदावत रखने लगे। इसका परिणाम आये दिन संघर्ष में निकलने लगा जिनमें बहुधा वही मारे गये जिनकी कोई ग़लती नहीं होती थी। यह कुछ विद्रोही समूहों के लिए चिंता का विषय बन गया। आम तौर पर लोग आपस में सद्भाव और भाई-चारे के साथ रहते आये हैं, किंतु इस प्रकार की परिस्थिति में समुदायों के बीच दूरी बढ़नी स्वाभाविक थी। समय के साथ यह दूरी खाई में तब्दील हो गयी। जातीय समूहों के बीच इस प्रकार के तनाव और उसके लगातार बने रहने से लोगों के आपसी संबंध बुरी तरह प्रभावित हुए।

कुछ लोगों ने यह भी बताया कि बाग़ियों का व्यापारिक हितों की पूर्ति के लिए भी इस्तेमाल किया जाता है। आम तौर पर सरकारी ठेकों को पाने के लिए और प्रभावशाली व्यक्तियों द्वारा अपने विरोधियों को धमकाने के लिए इन पूर्व-बाग़ियों का इस्तेमाल किया जाता है। कुछेक बाग़ी प्रायः इन कार्यों में लिप्त भी पाए गये हैं। सुना तो यह भी गया है कि ऐसे बाग़ी सिर्फ़ इतने पर ही नहीं रुकते, बल्कि समाज के किसी रसूखदार व्यक्ति के व्यावसायिक-हितों को साधने के लिए उनके विरोधियों की हत्या करने में भी नहीं हिचकिचाते। इस प्रकार की हत्याओं का आरोप सामान्य जीवन जी रहे बाग़ियों पर न लगा कर भूमिगत विद्रोहियों पर लगाया जाता है। इस तरह ये मामले अनसुलझे ही रह जाते हैं।

[19] उल्फ़ा के विदेश विभाग का एक पूर्व-सदस्य.

[20] एनडीएफ़बी का एक सदस्य जिसने आत्म-समर्पण का रास्ता चुना था.

अनेक लोगों ने आत्मसमर्पण करने वाले बाग़ियों के लिए पुनर्वास मसविदे को सेवा और शर्तों से युक्त विज्ञापन बताया और इसकी निंदा की है। वे इसे बाग़ियों को नियंत्रित करने का एक तरीक़ा बताते हैं। प्रशासन यह तरीक़ा अपना कर हथियार डाल चुके बाग़ियों का मनमर्जी से इस्तेमाल करता है।

निष्कर्ष

संगठन से जुड़ने के बाद और शुरू के कुछ वर्षों तक बाग़ियों के बीच उत्साह रहता है। बाद के वर्षों में यह जोश काफ़ी कम हो जाता है, लेकिन फिर भी उन्हें विषाद और अवसाद से भरा भूमिगत जीवन जारी रखना पड़ता है। इसमें कोई शक नहीं कि सशस्त्र विद्रोही समूहों से जुड़ने के बाद कैडरों के बीच तार्किकता और आलोचना की चेतना का संचार हुआ। उन्होंने अपने 'स्वत्व' को पहचाना। अनेक बाग़ी स्वीकार करते हैं कि संगठन के कठिन प्रशिक्षण और उसकी राजनीतिक कक्षाओं से गुज़रने के बाद उन्होंने खुद को अलग और शिक्षित महसूस किया। इससे उन्हें अपने समाज को गहरी नज़र से समझने का मौक़ा मिला। समाज के नियम-क़ायदों, धार्मिक-संस्थानों, अंधविश्वास और कदाचारों के विरोध में सवाल खड़े करने की हिम्मत भी मिली। हालाँकि उन पर यह आरोप भी लगाया जाता है कि उनकी चिंता और निष्ठाओं की जड़ में उनके व्यक्तिगत हित और स्वार्थ ज़्यादा प्रबल रहे हैं।

भूमिगत सशस्त्र संगठनों के बारे में एक आम धारणा यह बनती गयी है कि उसके नेतृत्व ने संगठन का केवल सकारात्मक पक्ष ही प्रस्तुत किया है, जबकि संगठन के क्रियाकलापों में बहुत कुछ ऐसा है जिसे सिरे से नकारात्मक कहा जा सकता है। अपने स्याह पहलुओं और विफलताओं पर बात रखने का साहस केवल उल्फ़ा और एनडीएफ़बी जैसे संगठन के सदस्यों में ही दिखाई दिया। अधिकांश सशस्त्र समूह इस बात को लेकर पूर्णरूपेण आश्वस्त हैं कि उन्होंने समाज में अपरिहार्य और अनिवार्य बदलावों को धरातल पर लाने में महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय भूमिका निभाई है। उस दौरान हुई हिंसा और बलप्रयोग को वे समय की ज़रूरत बताते हैं। उनका मानना है कि अवसर मिलने पर आज वही बदलाव राजनीतिक और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के ज़रिये भी लाए जा सकते हैं।

लक्ष्य से भटकाव को आंदोलन की विफलता के रूप में देखा जा सकता है, हालाँकि इन संगठनों का अभ्युदय ग़लत नहीं ठहराया जा सकता। लेकिन, बहुत से लोगों का मानना है कि संगठनों में भटकाव का एक ऐसा दौर भी आया जब उन्हें अनुप्राणित करने वाले तर्क कहीं खो गये और उनकी जगह केवल हिंसा-प्रतिहिंसा और मौत का एक अंतहीन मंज़र रह गया। ज़ाहिर है कि बृहत्तर समाज के लिए यह किसी विभीषिका से कम नहीं था।

मौजूदा दौर में सशस्त्र आंदोलन भूमण्डलीकरण, पाश्चात्य-संस्कृति के प्रभाव और बाज़ारवादी अर्थव्यवस्था से उत्पन्न चुनौतियों से घिरा है। आंदोलन के सामने इन अवरोधों को पहले भी चिह्नित किया गया था। किंतु, अब सबसे बड़ा डर यह है कि स्थानीय सशस्त्र समूह कहीं 'जिहादियों' की सुरक्षा के लिए अपने क्षेत्र और भूमि का प्रयोग करने की इजाज़त न दे डालें। यह आशंका इसलिए बलवती लगती है क्योंकि तथाकथित जिहादी बांग्लादेश और अफ़ग़ानिस्तान जैसे देशों में बदस्तूर सक्रिय हैं। ऐसे तत्त्व भूमिगत समूहों और संगठन को अपने देश से पलायन करने का निर्देश दे सकते हैं, या उन्हें इस स्थिति के लिए बाध्य कर सकते हैं।

कुछ लोग यह भी स्वीकार करते हैं कि वे इस राज्य में वियतनाम और चीन जैसे किसी आंदोलन को इसलिए आकार नहीं दे सके क्योंकि इन 'संगठनों' के अंदर जल्द ही फूट, अविश्वास, विभाजन और भ्रम ने अपना डेरा जमा लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि बहुत से कार्यकर्ता संगठन छोड़ कर पलायन कर गये— उनके पास न आत्म-विश्वास बचा, न प्रतिबद्धता।